DAILY NEWS BULLETIN

LEADING HEALTH, POPULATION AND FAMILY WELFARE STORIES OF THE DAY

Monday 20240226

डायबिटीज

डायबिटीज की बीमारी बन सकती है किडनी फेलियर की वजह, जानें कैसे (Dainik Jagran: 20240226)

https://www.jagran.com/lifestyle/health-how-diabetes-affects-the-kidneys-23661507.html

डायबिटीज किडनी की सेहत के लिए एक बड़ा खतरा है। डायबिटीज के चलते किडनी की अपशिष्ट पदार्थों को फ़िल्टर करने की क्षमता कम होने लगती है। जिसके चलते ब्लड में गदंगी जमा होने लगती है इससे कई तरह की हेल्थ प्रॉब्लम्स पैदा हो सकती हैं। करीब 40 प्रतिशत किडनी फेलियर के मामलों की सबसे बड़ी वजह डायबिटीज की बीमारी है।

डायबिटीज की बीमारी बन सकती है किडनी फेलियर की वजह, जानें कैसे
डायबिटीज कैसे किडनी को कर सकती है प्रभावित
डायबिटीज एक ऐसी बीमारी है जिसका असर शरीर के कई अंगों पर पड़ता है, लेकिन किडनी सबसे ज्यादा प्रभावित होती है

करीब 40 प्रतिशत किडनी फेलियर के मामले डायबिटीज के कारण ही होते हैं।
ब्लड शुगर के स्तर पर नियंत्रण डायबेटिक किडनी की बीमारी को रोकने और मैनेज करने के लिए महत्वपूर्ण है।

लाइफस्टाइल डेस्क, नई दिल्ली। डायबिटीज (मधुमेह) मेटाबॉलिज्म से जुड़ी एक समस्या है, जिसमें मरीज का ब्लड ग्लूकोज लेवल बढ़ जाता है। दुनिया में लगभग 422 मिलियन (42 करोड़) लोग डायबिटीज से प्रभावित हैं। डायबिटीज एक ऐसी बीमारी है जिसका असर शरीर के कई सारे अंगों पर पड़ता है, लेकिन इससे सबसे ज्यादा किडनी प्रभावित होती है, जिसे अकसर नजरअंदाज कर दिया जाता है। डायबिटीज से पीड़ित हर 3 में से 1 वयस्क किडनी से संबंधित समस्याओं से पीड़ित है।

डायबिटीज और किडनी फंक्शन के बीच यह कनेक्शन एक बड़ी चिंता का कारण है। ग्लूकोज लेवल बढ़ने से शरीर के कई अंग खासतौर से कार्डियोवैस्कुलर सिस्टम और किडनी के खराब होने सबसे ज्यादा खतरा होता है। किडनी के डैमेज होने की स्थिति को डायबिटीक नेफ्रोपैथी कहते हैं। डायबिटीक नेफ्रोपैथी एक तरह का क्रोनिक किडनी डिजीज़ है। हाई ब्लड प्रेशर और किडनी की समस्या से परेशान लोगों को इसका ज्यादा खतरा होता है।

किडनी शरीर के आंतरिक संतुलन को बनाए रखने और ब्लड से अपशिष्ट व अतिरिक्त तरल पदार्थों को फ़िल्टर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। डायबिटीज में ब्लड शुगर लंबे समय तक हाई रहने से किडनी की नाजुक फ़िल्टर इकाइयों को नुकसान होता है, जिन्हें नेफ्रॉन के रूप में जाना जाता है।

इन तरीकों से डैमेज होती है किडनी
ग्लोमेरुलर डैमेज
हाई ब्लड शुगर का लेवल ग्लोमेरुली (किडनी के नेफ्रॉन के भीतर छोटी ब्लड वेसेल्स) को नुकसान पहुंचा सकता है, जिससे अपशिष्ट पदार्थों को फ़िल्टर करने की उनकी क्षमता कम हो जाती है।

पुरानी सूजन और ऑक्सीडेटिव तनाव
ये सूजन संबंधी प्रतिक्रियाओं को ट्रिगर करके और फ्री रेडिकल्स के निर्माण को बढ़ावा देकर किडनी को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

एडवांस्ड ग्लाइकेशन एंड प्रोडक्ट (एजीई) का संचय
हाई ब्लड शुगर के स्तर पर प्रोटीन के लंबे समय तक संपर्क में रहने से एजीई का फॉर्मेशन होता है, जो किडनी फंक्शन को ख़राब कर सकता है और सूजन व फाइब्रोसिस का कारण बन सकता है।

डायबिटीज के साथ अक्सर हाई ब्लड प्रेशर भी रहता है, जिससे दोनों के बीच एक नुकसानदायक तालमेल बनता है, जो किडनी के नुकसान को और बढ़ा देता है। बढ़ा हुआ ब्लड प्रेशर किडनी में पहले से ही डैमेज ब्लड वेसेल्स पर एक्स्ट्रा प्रेशर डालता है, जिससे डायबिटीज संबंधी नेफ्रोपैथी की गति और तेज हो जाती है।

जैसे-जैसे डायबिटीज किडनी को नुकसान पहुंचाता रहता है, अपशिष्ट और अतिरिक्त तरल पदार्थ को फ़िल्टर करने की उनकी क्षमता कम हो जाती है। किडनी की कार्यक्षमता में इस कमी से रक्त में विषाक्त पदार्थों का संचय हो सकता है, जिससे कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याएं पैदा हो सकती हैं। डायबेटिक नेफ्रोपैथी वाले व्यक्तियों को दिल के दौरे और स्ट्रोक सहित हृदय संबंधी बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है।

शीघ्र इलाज और मैनेजमेंट
डॉ. संजीव गुलाटी, प्रेसिडेंट, इंडियन सोसाइटी ऑफ नेफ्रोलॉजी और प्रिंसिपल डायरेक्टर, नेफ्रोलॉजी, फोर्टिस एस्कॉर्ट्स, दिल्ली का कहना है कि, 'डायबेटिक किडनी की बीमारी एक साइलेंट किलर है। डायबेटिक किडनी की बीमारी वाले अधिकांश रोगियों में लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। इसलिए, यूरिन एल्ब्यूमिन-टू-क्रिएटिनिन रेशियो (यूएसीआर) और अनुमानित ग्लोमेरुलर फिल्टरेशन रेट (ईजीएफआर) जैसे टेस्ट के जरिए किडनी की कार्यप्रणाली की नियमित निगरानी से इस रोग शीघ्र पता लगाने और समय पर इसके उपचार में मदद मिल सकती है। इसके अलावा, दवा, खानपान और जीवनशैली में बदलाव के जरिए डायबिटीज के रोगियों में ब्लड शुगर के स्तर पर नियंत्रण डायबेटिक किडनी की बीमारी को रोकने और मैनेज करने के लिए महत्वपूर्ण है। हाई ब्लड प्रेशर को नियंत्रित करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। जीवनशैली में बदलाव और दवाएं ब्लड प्रेशर को सही सीमा के भीतर बनाए रखने में मदद कर सकती हैं।'

वायु प्रदूषण

ट्रैफिक का प्रदूषण बन सकता है आपके दिमाग का दुश्मन, स्टडी में सामने आया डिमेंशिया से इसका संबंध (Dainik Jagran: 20240226)

https://www.jagran.com/lifestyle/health-air-pollution-from-traffic-can-cause-dementia-finds-study-23661028.html

वायु प्रदूषण की वजह से सेहत से जुड़ी कई समस्याएं हो सकती हैं जिसमें डिमेंशिया भी शामिल है। ट्रैफिक से होने वाला प्रदूषण दिमागी सेहत को काफी प्रभाव करता है। इस बारे में हाल ही में एक स्टडी सामने आई है। इस स्टडी में इसके कारण और प्रभाव पता लगाने की कोशिश की गई है। जानें क्या पाया गया इस स्टडी में और कैसे कर सकते हैं प्रदूषण से बचाव।

ट्रैफिक के प्रदूषण से हो बढ़ सकता है डिमेंशिया का खतरा
ट्रैफिक से होने वाले प्रदूषण की वजह से डिमेंशिया का खतरा अधिक बढ़ जाता है।
डिमेंशिया में याददाश्त कमजोर होने, बातचीत करने में तकलीफ, मूड स्विंग्स जैसे लक्षण नजर आ सकते हैं।
प्रदूषण से बचाव करने के लिए अपनी डाइट हेल्दी बनाएं, मास्क लगाएं और बेवजह बाहर निकलने से बचें।
लाइफस्टाइल डेस्क, नई दिल्ली। Air Pollution: वायु प्रदूषण सेहत के लिए किसी श्राप से कम नहीं है। इस वजह से सेहत से जुड़ी कितनी ही परेशानियों का सामना करना पड़ता है, इसका आपको कुछ हद तक अंदाजा होगा। वायु प्रदूषण की वजह से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले अंग फेफड़े हैं। हवा के जरिए शरीर में प्रवेश करने वाले प्रदूषक सबसे पहले फेफड़ों में पहुंचते हैं, जिस कारण से उन्हें सबसे पहले नुकसान होता है, लेकिन फेफड़ों के जरिए प्रदूषक ब्लड वेसल्स में भी प्रवेश कर सकते हैं, जिनमें PM 2.5 सबसे छोटा प्रदूषक होता है, जो आसानी से बल्ड में जा सकता है और ब्लड में मिलकर शरीर के किसी भी हिस्से तक पहुंच सकते हैं।

क्या है यह नई स्टडी?
अभी तक आपने सुना होगा कि वायु प्रदूषण की वजह से दिल की बीमारियां, रेस्पिरेटरी डिजीज, डायबिटीज और रिप्रोडक्टिव ऑर्गन्स प्रभावित होते हैं, लेकिन इसकी वजह से आपके दिमाग पर भी काफी गंभीर नकरात्मक प्रभाव पड़ सकते हैं। हाल ही में, इस बारे में एक स्टडी सामने आई है, जिसमें ट्रैफिक की वजह से होने वाले प्रदूषण का दिमाग पर क्या असर होता है, इस बारे में एक चौंकाने वाली बात सामने आई है। न्यूरोलॉजी में पब्लिश हुई स्टडी में यह बताया गया है कि ट्रैफिक की वजह से होने वाला प्रदूषण डिमेंशिया के गंभीर प्रकार के लिए जिम्मेदार हो सकता है। साथ ही, जिन व्यक्तियों में डिमेंशिया के जीन मौजूद नहीं है, उनमें भी डिमेंशिया का प्रमुख कारण बन सकता है।

क्यों बढ़ता है डिमेंशिया का खतरा?
हवा में प्रदूषण के PM 2.5 पार्टिकल्स मौजूद होते हैं, जो ब्लड-ब्रेन बैरियर को पार कर सकता है, जिस वजह से यह दिमाग तक पहुंचकर आसानी से नुकसान पहुंचा सकता है। इस स्टडी में यह पाया गया कि जिन व्यक्ति को ट्रैफिक की वजह से होने वाले प्रदूषण का ज्यादा सामना करना पड़ता है, उनमें डिमेंशिया के लिए जिम्मेदार माना जाना वाला अमाइलॉइड प्लेग अधिक मात्रा में पाया गया। यह प्लेग न्यूरॉन्स पर इकट्ठा होने लगता है, जिससे कॉग्नीटिव हेल्थ पर प्रभाव पड़ता है और डिमेंशिया का खतरा बढ़ जाता है। इसलिए इस प्लेग को डिमेंशिया के लिए जिम्मेदार माना जाता है। इसके पलहे जामा इंटरनल मेडिसिन में भी इस बारे में एक स्टडी पब्लिश हुई थी, जिसमें यह पाया गया था कि जो व्यक्ति अधिक प्रदूषण में रहते हैं, उनमें डिमेंशिया का खतरा काफी अधिक रहता है।

क्या है डिमेंशिया?
अल्जाइमर्स एसोशिएशन के अनुसार, डिमेंशिया खुद में कोई बीमारी नहीं है बल्कि, वह कई बीमारियों का समूह है, जो दिमागी सेहत को प्रभावित करते हैं। इनमें अल्जाइमर सबसे आम है। इस कंडिशन में व्यक्ति की कॉग्नीटिव हेल्थ प्रभावित होती है, जिसकी वजह से रोज के छोटे-मोटे काम करने में भी व्यक्ति असमर्थ होता जाता है। वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन के अनुसार, दुनियाभर में लगभग 5.5 करोड़ लोग डिमेंशिया से पीड़ित हैं।

कैसे कर सकते हैं वायु प्रदूषण से बचाव?
अपने घर या दफ्तर के आस-पास के AQI लेवल को नियमित रूप से चेक करें।
प्रदूषण अधिक होने पर बिना मास्क के बाहर न निकलें।
हर छोटी राइड के लिए अपनी कार का इस्तेमाल न करें। इसके बदले पब्लिक ट्रांसपोर्ट जैसे- मेट्रो का इस्तेमाल करें, इससे प्रदूषण कम होता है और आपको भी कम प्रदूषण का सामना करना पड़ेगा।
घर में और गाड़ी में एयर प्योरिफायर का इस्तेमाल करें।
डाइट में गुड़ और विटामिन-सी व ओमेगा-3 फैटी एसिड से भरपूर फूड आइटम्स को शामिल करें।
घर के अंदर इंडोर प्लांट्स लगाएं ताकि घर के भीतर की हवा शुद्ध रहे।
डिटॉक्सीफाइंग ड्रिंक्स पीएं, जैसे हर्बल टी।

चिकित्सक-रोगी अनुपात

हिमाचल में चिकित्सक-रोगी अनुपात विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों के अनुसार नहीं (Dainik Tribune: 20240226)

https://www.dainiktribuneonline.com/news/himachal/doctor-patient-ratio-in-himachal-is-not-as-per-world-health-organization-standards/

तय मानक: एक हजार लोगों पर एक डॉक्टर, तैनात 3 हजार पर एक ही

स्वास्थ्य सुविधाओं के मामले में भले ही हिमाचल देश के शीर्ष राज्यों में से एक है लेकिन इसके बावजूद राज्य में विश्व स्वास्थ्य संगठन (डबल्यूएचओ) के मानकों के मुताबिक चिकित्सक-रोगी अनुपात नहीं है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जहां प्रति एक हजार आबादी पर एक चिकित्सक की तैनाती के मानक तय किए हैं, वहीं हिमाचल में 3 हजार से अधिक की आबादी पर एक चिकित्सक तैनात है। ऐसे में विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों के मुताबिक प्रदेश में चिकित्सक रोगी अनुपात को पूरा करने के लिए राज्य में डॉक्टरों की काडर संख्या बढ़ाने की दरकार है।

हिमाचल की आबादी करीब 80 लाख है। 80 लाख की आबादी पर प्रदेश में 2677 चिकित्सकों की तैनाती की गई है। इस तरह प्रति हजार आबादी पर चिकित्सकों का अनुपात 0.33 है।

यानी करीब 3000 लोगों पर एक डॉक्टर की सुविधा उपलब्ध है। हिमाचल प्रदेश की वर्ष 2011 की जनगणना व सालाना वृद्धि के आधार पर राज्य की आबादी का अनुमान लगाया गया है। ये अनुमानित आबादी 8016691 है।

भरमौर के भाजपा विधायक डॉ. जनक राज ने विधानसभा में चिकित्सक-रोगी अनुपात का मुद्दा उठाया था। इस पर सरकार की ओर से बताया गया कि प्रदेश में कुल 2677 डॉक्टर सेवाएं दे रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एक हजार की आबादी पर एक डॉक्टर निर्धारित किया है। हिमाचल में इस समय 3000 लोगों पर एक डॉक्टर उपलब्ध है।

हिमाचल में जिला शिमला में सबसे अधिक डॉक्टर हैं। जिला शिमला में 735 डॉक्टर सेवाएं दे रहे हैं। आबादी के अनुपात में सबसे कम डॉक्टर जिला ऊना में हैं। यहां 118 डॉक्टर हैं जबकि अनुमानित जनसंख्या 630650 है।

जिला बिलासपुर में डॉक्टरों की संख्या 98, चंबा में 129, हमीरपुर जिले में 152, किन्नौर में 62, कुल्लू में 110, सिरमौर जिले में 144 व सोलन जिले में 187 डॉक्टर हैं। प्रदेश के सबसे बड़े जिले कांगड़ा में 539 व मंडी में 356 डॉक्टर हैं। लाहौल-स्पीति में महज 29 हजार से कुछ अधिक की आबादी है। इस आबादी के लिए 47 डॉक्टर हैं।

देश चिकित्सक-रोगी अनुपात के मामले में तमिलनाडु, दिल्ली, कर्नाटक, केरल, गोवा तथा पंजाब पहले 5 स्थानों पर हैं। इन पांचों राज्यों में एक हजार से कम आबादी पर एक चिकित्सक तैनात है।

जानकारी के मुताबिक झारखंड, हरियाणा, छत्तीसगढ़, बिहार तथा हिमाचल देश के उन राज्यों में शुमार हैं जहां चिकित्सकों की तैनाती न सिर्फ विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों से कम है, बल्कि देश में भी आबादी के हिसाब के कम है।

एक साल में डॉक्टरों के 34 नए पद सृजित
स्वास्थ्य मंत्री धनी राम शांडिल के अनुसार एक साल में राज्य में डॉक्टरों के 34 नए पद सृजित किए गए। इनमें से 30 पद आईजीएमसी शिमला व चार पद सिविल अस्पताल सुजानपुर में सृजित किये गए। स्वास्थ्य मंत्री के अनुसार चम्बा जिले के सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र किलाड़, होली, भरमौर व चूड़ी में डॉक्टरों के 27 पद सृजित हैं लेकिन मात्र 13 पद ही भरे गए हैं।

जीभ से करें रोगों की पहचान

सेहत की बात: जीभ में दिख रहा है कुछ अलग सा बदलाव? हो जाइए सावधान- ये गंभीर बीमारियों का हो सकता है संकेत (Dainik Tribune: 20240226)

https://www.amarujala.com/photo-gallery/lifestyle/fitness/tongue-shows-the-symptoms-of-several-diseases-white-coating-and-redness-of-tongue-2024-02-25

आप बीमारियों की पहचान कैसे करते हैं? शरीर पर दिखने वाले लक्षण या फिर जांच की रिपोर्ट के आधार पर। पर क्या आप जानते हैं कि जीभ को देखकर भी आप शरीर में होने वाली कई प्रकार की समस्याओं का अंदाजा लगा सकते हैं? स्वास्थ्य विशेषज्ञ कहते हैं, जीभ के रंग को देखकर आप शरीर में कई प्रकार के संक्रमण और गंभीर बीमारियों का भी पता लगा सकते हैं। मुंह में होने वाले छाले, पैच और स्पॉट आमतौर पर हानिरहित होते हैं, लेकिन कभी-कभी ये आपके समग्र स्वास्थ्य के बारे में भी बताते हैं।

डॉक्टर कहते हैं, जीभ में अगर आपको कुछ समय से असामान्य परिवर्तन दिख रहा है या फिर इसके रंग में कोई बदलाव नजर आ रहा है तो सावधान हो जाने की आवश्यकता है। कुछ स्थितियों में ये समस्याकारक संकेत हो सकता है जिसका समय रहते इलाज किया जाना आवश्यक हो जाता है।

जीभ से करें रोगों की पहचान
जीभ देखकर कर सकते हैं रोगों की पहचान

मेडिकल विशेषज्ञ बताते हैं, संक्रमण, दवा संबंधी समस्याएं और यहां तक कि उम्र बढ़ना भी आपकी जीभ पर अपना निशान बना सकता है। पता लगाएं कि आपकी जीभ पर नजर आने वाली असमान्यता किसी गंभीर स्वास्थ्य समस्या का संकेत तो नहीं है? जीभ पर नजर आने वाले कुछ बदलाव तो रक्त वाहिकाओं में होने वाली किसी गंभीर समस्या का भी संकेत हो सकते हैं।

आइए जानते हैं कि जीभ में दिखने वाले किस प्रकार के बदलावों को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए?

जीभ पर सफेद धब्बे
जीभ पर सफेद रंग के धब्बे नजर आना

जीभ में किसी बदलाव के बारे में जानने से पहले यह जानना जरूरी है कि यह सामान्यरूप से कैसी होनी चाहिए? इस बारे में स्वास्थ्य विशेषज्ञ कहते हैं, सामान्यतौर पर जीभ का रंग हल्का गुलाबी होता है जो संकेत है कि जीभ स्वस्थ है।

कुछ स्थितियों में आपकी जीभ का रंग हल्के गुलाबी से बदलकर पैच में सफेद नजर आ सकता है। सफेद धब्बे थ्रश फंगल संक्रमण का संकेत हो सकते हैं। ऐसा अक्सर तब होता है जब किसी बीमारी या दवा के कारण मुंह में बैक्टीरिया का संतुलन बिगड़ जाता है। इस तरह के बदलाव पर ध्यान दिया जाना जरूरी है क्योंकि ल्यूकोप्लाकिया की समस्या में भी जीभ में ऐसा बदलाव देखा जाता रहा है।

जीभ पर लाल रंग के धब्बे
बच्चों में कावासाकी रोग की स्थिति

जीभ सामान्यतौर पर हल्के गुलाबी रंग की नजर आती हैं पर अगर ये लाल दिख रही है या फिर इसका रंग स्ट्रॉबेरी जैसा दिखता है तो ये कुछ प्रकार के विटामिन्स या फिर बच्चों में गंभीर बीमारी की तरफ भी इशारा हो सकती है। यदि आपकी जीभ लाल और चिकनी है और मुंह में दर्द होता है, तो यह संकेत हो

सकता है कि आपके शरीर में विटामिन बी3 की कमी है। इसके अलावा अगर बच्चों की जीभ में इस तरह की बदलाव दिख रहा है तो कुछ स्थितियों में इसे कावासाकी रोग का इशारा हो सकता है। ये एक दुर्लभ और गंभीर बीमारी जो रक्त वाहिकाओं में सूजन के कारण होती है।

जीभ में जलन की समस्या
बर्निंग माउथ सिंड्रोंम की दिक्कत

रंगों में बदलाव के अलावा जीभ में कुछ अजीब सा एहसास होता है तो इसपर भी गंभीरता से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। यदि आपकी जीभ में जलन या अत्यधिक कड़वापन जैसा एहसास होता है तो इसे बर्निंग माउथ सिंड्रोंम की समस्या माना जा सकता है। ये जीभ की नसों में किसी दिक्कत के कारण हो सकती है। कुछ स्वास्थ्य समस्याएं मुंह में शुष्की, संक्रमण, एसिड रिफ्लक्स और मधुमेह का संकेत हो सकता है।

थायरॉइड

Thyroid बढ़ने के बारे में चीख-चीखकर बताती हैं आंखें, मगर कोई नहीं देता ध्यान (Navbharat Times: 20240226)

https://navbharattimes.indiatimes.com/lifestyle/health/thyroid-symptoms-which-can-be-seen-in-eyes-you-should-not-ignore/articleshow/107970277.cms?story=8

थायरॉइड हॉर्मोनल बीमारी है जो काफी गंभीर साबित हो सकती है। इसका खतरा महिलाओं को ज्यादा होता है, अगर आप इसे वक्त पर छुटकारा पाना चाहते हैं तो इसके लक्षणों को नजरअंदाज ना करें।

थायरॉइड के मरीज की आंख में कभी-कभी एक ऐसी कंडीशन डेवलप हो जाती है जिसकी वजह से इम्यून सिस्टम आंखों के आसपास की मांसपेशियों और अन्य टिशूज पर अटैक करने लगता है। थायरॉइड नेत्र रोग की वजह से आने वाली यह सूजन आईबॉल में देखने में ऐसी लगती है कि मानो आंखें अपने सॉकेट से बाहर आ जाएंगी।

थायरॉइड आई डिजीज की स्थिति में आपका इम्यून सिस्टम संक्रमण से लड़ने की जगह गलती से थायरॉइड ग्लैंड पर ही हमला कर देता है, जिसकी वजह से थायरॉइड हार्मोन जरूरत से ज्यादा या कम मात्रा में बनने लगते हैं और आंखों पर प्रभाव डालते हैं।

आंखें निकल आती हैं बाहर
शार्प साइट आई हॉस्पिटल्स दिल्ली में वरिष्ठ नेत्र चिकित्सक डॉ. पुनीत जैन कहते हैं कि थायरॉइड एक ऐसा ग्लैंड है जो हमारे गले में मौजूद होता है। इस ग्लैंड में से एक हार्मोन निकलता है, जिसे थायरॉइड हार्मोन कहते हैं। यह थायरॉइड हार्मोन हमारे शरीर में काफी सारे काम करता है।

अगर थायरॉइड ग्लैंड के काम में कोई कमी आती है, तो इसका असर आंख या उसके आसपास के हिस्से पर पड़ता है। थायरॉइड आई डिजीज एक ऑटोइम्यून बीमारी है, जो कभी भी आंख को सीधे तौर पर प्रभावित नहीं करती है बल्कि आंख के आस-पास के टिश्यू को नुकसान पहुंचाती है।

बड़ी-बड़ी आंखें हो सकती है थायरॉइड आई डिजीज
इसमें आंख की मांसपेशियां और आंख के पीछे के फैटी टिश्यू में सूजन आ जाती है। यह बीमारी ज्यादा हाइपरथायरायडिज्म मरीजों में देखने को मिलती है। जिन लोगों को थायरॉइड की समस्या नहीं है, यह बीमारी कुछ मामलों में उन्हें भी हो सकती है। आंखों का बाहर की तरफ निकलना थायरॉइड आई डिजीज का सबसे आम लक्षण है।

दूसरा बड़ा लक्षण है पलकों का ऊपर की तरफ उठना जिससे आंखें बड़ी लगती हैं। पलकों में सूजन आना, डबल दिखाई देना आदि लक्षण भी इसी बीमारी के हैं। कुछ गंभीर मामलों में मरीज की नजर भी कमजोर हो सकती है जो कि ऑप्टिक नर्व पर खिंचाव आने के कारण होता है। आमतौर पर थायरॉइड आई डिजीज आंख की नज़र को सीधे प्रभावित नहीं करती है।

थायरॉइड का घरेलू इलाज

हॉर्मोन का अधिक उत्पादन
मैरिंगो एशिया हॉस्पिटल्स फरीदाबाद से इंटरनल मेडिसिन के सीनियर कंसल्टेंट डॉ. संतोष कुमार अग्रवाल बताते हैं कि थायरॉइड नेत्र रोग मुख्य रूप से हाइपर थायराइड रोग में होता है (थायराइड ग्रंथि बहुत अधिक मात्रा में हार्मोन का उत्पादन करती है)। हाइपरथायरायडिज्म आंखों को प्रभावित कर सकता है, जिसे थायरॉइड ऑप्थाल्मोपैथी के रूप में जाना जाता है।

यह हार्ट को भी प्रभावित कर सकती है जिससे हृदय गति अनियमित और ज्यादा बढ़ सकती है, जिसे एरिथमिया कहा जाता है। हाइपरथायरायडिज्म दिमाग के टिश्यू और पेरीफेरल नर्वस और ब्रेन पर भी असर डाल सकती है, जो न्यूरोपैथी (हाथ-पैर में झनझनाहट, सुन्नपन, कमजोरी, दर्द, जलन जैसा महसूस होना) और एन्सेफैलोपैथी (ब्रेन की कार्य क्षमता में कमी आना) का कारण बन सकते हैं।

आ सकता है अंधापन
हाइपरथायरायडिज्म के कारण आंखों के विशेष रूप से प्रभावित होने को ग्रेव्स ऑप्थाल्मोपैथी (थायरॉइड आई डिजीज) कहा जाता है, जो कॉर्निया को नुकसान पहुंचाने, अल्सर और यहां तक कि अंधापन जैसी गंभीर जटिलताओं का कारण बन सकती है।

आंखों की इन जटिलताओं को उचित निगरानी के साथ एंटी थायरॉइड दवाओं को जल्द शुरू करके, सिस्टेमिक और टोपिकल स्टेरॉयड की हाई डोज का इस्तेमाल, आंखों के लुब्रिकेंट्स का बार-बार उपयोग, आंखों को ढकने और आंखों से संबंधित चिकित्सकीय परामर्श के द्वारा मैनेज किया जा सकता है।

लक्षण के आधार पर होता है इस बीमारी का इलाज
डॉ. पुनीत जैन कहते हैं कि इस बीमारी का इलाज लक्षण के आधार पर किया जाता है। लक्षण दो तरह के हो सकते हैं-इंफ्लेमेटरी या फाइब्रोटिक। अगर किसी मरीज को आंखों में बल्जिंग (आंखों का बाहर की तरह होना), पलकों का ऊपर की तरफ उठना जैसे लक्षण हैं, तो ये इंफ्लेमेटरी है। फिर इसके लिए मरीज को दवाइयां दी जाती हैं।

लेकिन मरीज की बीमारी इंफ्लेमेटरी न होकर फाइब्रोटिक है, तो फिर मरीज को सर्जरी कराने की सलाह दी जाती है। मतलब दवा के द्वारा आंख अंदर नहीं जाएगी, इसलिए सर्जरी करने की जरूरत पड़ती है।

दरअसल, थायरॉइड आई डिजीज कोई गंभीर बीमारी नहीं है। लेकिन अगर इसके ट्रीटमेंट में ज्यादा देरी होती है, तो फिर ये मरीज की आंख की नजर को नुकसान पहुंचा सकती है। इस बीमारी की रोकथाम के

लिए जरूरी है सबसे पहले स्मोकिंग बंद करना। उसके बाद फिजिशियन से मिलकर थायरॉइड की ठीक से जांच कराएं और साथ ही दूसरी बीमारियों की भी जांच कराएं।

पुरुषों के मुकाबले महिलाओं को ज्यादा होती है यह प्रॉब्लम
थायरॉइड आई डिजीज ऑर्बिट (हड्डी का सॉकेट जिसमें आंख, आंख की मांसपेशियां, आंख की सारी नसें मौजूद होती हैं) का एक इंफ्लेमेटरी डिसऑर्डर है। यह बीमारी ग्रेव्स/हाइपरथायरायडिज्म रोग से काफी जुड़ी होती है लेकिन ऐसा जरूरी नहीं है कि सभी मरीजों में ग्रेव्स बीमारी हो।

लगभग 75-80 प्रतिशत मरीजों में थायरॉइड आई डिजीज ग्रेव्स बीमारी से जुड़ी होती है लेकिन थायरॉइड आई डिजीज सामान्य रूप से कार्य करने वाली थायरॉइड ग्लैंड्स में भी हो सकती है। इसलिए इसे जटिल इंफ्लेमेटरी डिसऑर्डर भी कहा जाता है।

थायरॉइड आई डिजीज का कारण
थायरॉइड आई डिजीज होने का मूल कारण अभी तक पता नहीं चला है। आमतौर पर स्मोकिंग इसका सबसे आम रिस्क फैक्टर है। यह बीमारी महिलाओं में ज्यादा देखने को मिलती है। यह एक ऑटोइम्यून बीमारी सिस्टेमिक ल्यूपस एरिथेमैटोसस (एसएलई) के कारण भी हो सकती है। थायरॉइड आई डिजीज 40-60 साल की उम्र में देखी जाती है।

Mental Health
Therapists warn of a new wave of anxiety fueled by climate change (Hindustan Times: 20240226)

https://www.hindustantimes.com/lifestyle/health/therapists-warn-of-a-new-wave-of-anxiety-fueled-by-climate-change-101708915309583.html

As the impacts of climate change intensify, a growing number of individuals grapple with a new form of anxiety, revealing profound concerns about the future.

When psychotherapist Caroline Hickman was asked to help a child overcome a fear of dogs, she introduced them to her Labradoodle, Murphy. “You get the child to feel confident in relation to the dog and teach the child skills to manage a dog,” she says. “You build the skills, build the competence, build the confidence, and then they’re less scared of dogs generally.” Climate anxiety is a different beast, Hickman says. “We don’t 100% know how to deal with it. And it would be a huge mistake to try and treat it like other anxieties that we are very familiar with that have been around for decades. This one is much, much worse.”

Climate anxiety poses unique challenges for therapists due to its broad impact on mental health.

In the most critical cases, climate anxiety disrupts the ability to function day to day. Children and young people in this category feel alienation from friends and family, distress when thinking about the future and intrusive thoughts about who will survive, according to Hickman’s research. Patients obsessively check for extreme weather, read climate change studies and pursue radical activism. Some, devastatingly, consider suicide as the only solution.

And Hickman isn't the only expert seeing this. In her book A Field Guide to Climate Anxiety, Sarah Ray describes a student who had such severe "self-loathing eco-guilt" that she stopped consuming much at all, including food.

Hindustan Times - your fastest source for breaking news! Read now.
Most people's concern about global warming isn't that pronounced. It can be difficult to pin down exactly what climate anxiety is, and therefore what to do about it. Especially for adults, there's still a stigma in admitting that it's severely affecting your life. But therapists report they are grappling with a rise in demand from clients who say climate change is having a profound effect on their mental health, and studies suggest the angst is increasingly widespread. Existing professional methods for dealing with anxiety aren't always suitable in these situations. For the counseling community, the situation calls for a new playbook.

In 2021, a study of 10,000 children and young people in 10 countries, co-authored by Hickman and published in The Lancet Planetary Health, found that 59% were very or extremely worried about climate change and more than 45% said it had a negative effect on their daily life. A survey of mental health professionals in the UK, published last year in The Journal of Climate Change and Health, found that they perceived "significantly more" patients describing climate change as a factor in their mental health or emotional distress, an increase the participants expected to continue. Frustratingly, climate anxiety can also overlap existing mental health problems, making it difficult to analyze in isolation.

Therapists told Bloomberg Green that they typically see an uptick in patients struggling with climate anxiety when climate change is in the news; often around the time of a UN climate conference, a major scientific report or an episode of severe weather. Scientists working on climate change were among the first groups they saw experiencing this type of anxiety, therapists said, and those groups are still struggling. Among the close to 300 people who responded to a Bloomberg Green readers' survey about climate anxiety, just under one in five said they discuss the issue with a mental health professional.

One respondent, Natalie Warren, a 42-year-old UK expat living in Sydney, Australia, told us that while she isn't in therapy, she had felt a strong urge to act. Climate anxiety felt different to a previous mental health challenge: it is external, rather than internal, she says. "There's nothing wrong with someone who's suffering from climate anxiety," she says. 'It's not them that needs fixing."

How Therapists Diagnose and Treat Climate Anxiety

So what are therapists actually doing in their treatment rooms? The first point is they're not making any diagnoses, as anxiety about climate change isn't a disorder. "We consider it much more as an understandable response to a real and rational danger," says Patrick Kennedy-Williams, a clinical psychologist based in Oxford, UK. Working with someone who has social anxiety or a phobia is partly about "recalibrating their sense of risk and threats," he says — realigning the fear with the actual threat level. That isn't usually the case with climate change, he says, because "the threat is real."

Also, there's no "classic case" of climate or eco-anxiety. Some patients may need to discuss direct experience with climate impacts, such as a flood or wildfire destroying a home, while others might, for example, want to talk about their guilt at watching others suffering, or struggles with friends or family who are dismissive or hostile. People might not even say they're feeling "anxiety," he says, instead using words like trauma, grief and depression. "It

doesn't fit neatly into our way of thinking about mental health," Kennedy-Williams says, "probably because the climate crisis and our relationship with the climate crisis is a lot more multifaceted than that."

Climate anxiety often ends up being linked to many other dilemmas in the normal course of a person's life, including big choices like whether or not to have children, where to live or what to do for work. Many of these questions are already highly stressful and emotional. The problem of whether or not to have children, in particular, is one around which Kennedy-Williams has seen "huge amounts of distress" in the therapy room, he says.

Kennedy-Williams compares his experience with patients struggling with climate anxiety to working with people struggling with activity-limiting illnesses or medical difficulties, where clear solutions aren't often available. "You can't just say, 'Actually I'm sure there's nothing to worry about. I'm sure everything will be fine,'" he says. Instead, he tries to help patients "thrive and find joy in difficult circumstances."

Some anxieties are linked to specific triggers, which can be directly addressed and resolved. But climate change is more wide-ranging. Global warming is also not resolvable by any one person, so it's impossible to gain a sense of confidence and control over the problem. "You can't personally resolve it," says Hickman. "You can go off and do your recycling, and become an activist, or do X, Y, Z, but it's a global problem. It's not personal." Many patients also feel that those in power are asleep at the wheel, adding to a sense that no one is in control, she says.

Perhaps one of the most surprising aspects of anxiety over climate change: It can also be linked to climate denial. Experts said the two can be understood as different manifestations of the same feeling. "The conspiracy theorists are reassuring," says Hickman. "If you can't tolerate anxiety, you will then spin off into believing somebody who gives you false promises."

Overcoming all of these feelings is key to action actually being taken to solve the climate crisis. Fear and disempowerment lead people to turn inward, focusing on self-preservation and survivalism, rather than the more collective means needed to actually address climate change as an issue, says Louise Edgington, a British educational psychologist specializing in climate psychology, who works primarily in schools. "Wellbeing is not just about nice hugs and feeling good," she says. "It's a crucial part of actually making the changes we need to make."

So how to address it? Leslie Davenport, a Washington state-based therapist, co-developed a course for other professionals seeking ways to treat patients struggling with climate-related mental health issues. She highlights two broad types of coping strategies: internal and external.

She likens climate anxiety to holding a ball under water. Eventually, your arm will get tired, and it will pop up — it can't be suppressed forever. Internal strategies can include learning to calm your nervous system down, taking conscious breaks and focusing on your mental narratives. External strategies include finding ways to take action in whatever way is most appropriate, whether that's donating money or joining a local community group for clean air.

"I'd say as much as half of our climate anxiety has to do with the feeling of not being efficacious to do something about it," says Ray, who is also a professor and chair of environmental studies at California State Polytechnic University, Humboldt. Doing something in a group rather than alone can be helpful. "The thing that reduces the climate anxiety is being part of a collective…where people care as much as you do. You're not the only one."

Channeling anxiety in this way can turn into serious action. Opposition to the Dakota Access Pipeline and groups like Pacific Climate Warriors were motivated — in part — by their anxiety to do something radical, Ray says. It can also motivate others to run for public office. Warren, the survey respondent from Sydney, who has two young children and works in finance, ran for and represented the Greens on her local council between 2017 and 2021.

One of the many parents who responded to Bloomberg Green's survey, Warren says that what drives her now is the inevitable conversation she will one day have with her boys. When they ask 'How did you let it get so bad?" and "Why weren't people doing anything?' she wants to have something real to tell them: 'I need to be able to tell them that I tried."

Prostate cancer

Prostate cancer warning signs you should not ignore (Hindustan Times: 20240226)

https://www.hindustantimes.com/lifestyle/health/warning-signs-of-prostate-cancer-you-should-not-ignore-101708867166323.html

About 1 in 8 men will be diagnosed with a possibility of prostate cancer, as per American Cancer Society.

Prostate gland is a walnut shaped gland situated just below the urinary bladder and according to health experts, when the gland enlarges in size, it produces symptoms like urgency of urination, Nocturia (getting up at night more than two times to pass urine), decreased flow, straining to pass urine and incomplete evacuation of bladder. According to American Cancer Society, about one in eight men will be diagnosed with a possibility of Prostate Cancer.

Warning signs of prostate cancer you should not ignore

Unfortunately, majority of signs and symptoms described above remain the same for Benign Enlargement of prostate (BPH) or Prostate Cancer. In an interview with HT Lifestyle, Dr Anand Utture, Consultant Urologist at SL Raheja Hospital in Mahim, revealed, "The risk of developing Prostate Cancer increases after the age of 65 years, but it can also occur in younger age groups, and these forms of cancers are more aggressive. However, there are many signs and symptoms of prostate enlargement which are very specific to Prostate Cancer, which you should not ignore."

He shared, "These symptoms are blood in the urine or semen, pain and soreness in the hips, back, chest or other bones. Men may experience Erectile Dysfunction. If the Prostate Gland enlarges and gives pressure on the rectum, one may feel constipated. Additionally, there will be easy fatiguability, loss of weight, and decreased appetite. While the chance of Prostate Cancer increases in men after age of 65 years. the prevalence of Cancer is more in men with 1st degree relatives, like father or brother having Cancer. So, if one falls into any of these symptoms, they must visit a Urologist."

Dr Anand Utture concluded, “A Urologist can diagnose Prostate Cancer with simple tests like Per Rectal Finger Test Examination (DRC), blood PSA levels, Multiparametric Prostate MRI and Prostatic Biopsy. Prostate Cancer is a serious disease, but early detection is a key. If Prostate Cancer is diagnosed before it has spread to other parts of the body, more than 97 percent patients will live more than five years. So, though the Prostate is a small gland, early diagnosis and treatment of Prostate Cancer can help maintain a healthy lifestyle in a big way.”

Zombie deer disease

Is zombie deer disease a risk to humans? Scientists' reply unlocks new fear (Hindustan Times: 20240226)

https://www.hindustantimes.com/lifestyle/health/is-zombie-deer-disease-a-risk-to-humans-scientists-reply-unlocks-new-fear-101708866095979.html

No human cases of the disease have been reported yet but scientists have turned to experimental studies to hypothesise about animal-to-human transmission.

Experts are just as much in the dark as any of us when it comes to answering the question: Can the zombie deer diseases spread to humans? Although they're still climbing this hill, the rising number of cases in the US is taking a toll on the fear factor.

Scientists are still looking into if the zombie deer diseases can be transmitted to humans.

In their attempts to figure their way out, scientists are drawing up experimental studies and connecting the dots with the mad cow disease. In the latter case, it's already been confirmed that prions can spread from cattle to humans.

In her interview with the BBC, Jennifer Mullinax, an associate professor of wildlife ecology and management at the University of Maryland, said: “As of yet, there has been no transmission from deer or elk to humans.” If animal-to-human transmission becomes a reality, all those dystopian, far-fetched fictitious scenarios could easily transform into our new, nightmarish reality.

“However, given the nature of [the misfolded proteins], CDC and other agencies have supported all efforts to keep any prion disease out of the food chain,” the professor added.

About zombie deer disease

The recent zombie disease outbreak is a prion disease, also known as chronic wasting disease (CWD). While scientists are still mulling over its impact on humans, other prion diseases have had a track history of being detrimental to both animals and humans.

Centre for Disease Control and Prevention (CDC) has claimed deer, elk, reindeer, sika deer, and moose are the affected parties of CWD, all of which have been discovered so far in Canada, the US, Norway and South Korea.

As for its transmission, CWD's prions are reportedly spread via faeces, saliva, blood, and urine. Despite CWD being a contagious degenerative disease, the US Department of Agriculture's Animal and Plant Health Inspection Service doesn't list bacteria and viruses as its cause. Instead, a naturally occurring protein emerges as the lethal factor, becoming infectious when incorrectly folded.

Yet again, the cause of this misfolding is shrouded in mystery. However, they confirmed that once a normal prion protein takes this deadly shape, it also converts other commonly occurring proteins to their misfolded form. As the degeneration continues, the afflicted animal's brain cells die, ultimately resulting in its death.

What are the chances of zombie deer disease spreading to humans?
In 2023, the Alberta province's (Canada) surveillance results showed that the mule deer positivity rate had risen to 23%.

In line with the lack of current evidence that would otherwise suggest that CWD can be transmitted to humans, Mullinax said: “The current body of research is a mixed bag, meaning we don't know yet”.

University of Minnesota's Center for Infectious Disease Research and Policy Director, Michael Osterholm, also added his side of the research to the ongoing debate. Even though researchers are still assessing the potential exposure to humans who come in contact with contaminated soil or water, they've noted that mad cow disease and CWD prions are structurally different.

High blood pressure

Genes influence blood pressure from early childhood, reveals study (The Tribune: 20240226)

https://www.tribuneindia.com/news/health/genes-influence-blood-pressure-from-early-childhood-reveals-study-594476

Heart attacks and strokes are mostly caused by high blood pressure

Genes influence blood pressure from early childhood, reveals study
The study shows that high blood pressure occurs in all age groups and that it is related to hereditary factors.

Certain hypertension-related genes impact blood pressure from a young age, increasing the risk of cardiovascular disease as you become older. You can do something about it, though.

"We are talking about really small differences, so small that they may fall within what is considered normal blood pressure. The problem is that they tend to last your whole life," says PhD Candidate Karsten Ovretveit at the Norwegian University of Science and Technology's (NTNU) Department of Public Health and Nursing. He is one of the researchers behind a new study that has looked at the relationship between gene variants and blood pressure in the population.

The study shows that high blood pressure occurs in all age groups and that it is related to hereditary factors.

"We found that genetic factors affect blood pressure from the first years of childhood and throughout your entire life," says Ovretveit. Genetic data from large population studies.

Heart attacks and strokes are mostly caused by high blood pressure, and cardiovascular disease is Norway's second leading cause of mortality, accounting for 23 per cent of all deaths in 2022.

The direct medical cause of high blood pressure is unknown in many cases, but research shows that our genes play a significant role.

"Lifestyle diseases are often caused by a combination of heredity and environment. Diseases are often the result of not only one but very many genetic variants," says Ovretveit.

To find out how much a person is at risk of high blood pressure, researchers have used genetic data from large population studies. This has helped them develop a genetic risk score, which indicates how much your exact genetic makeup puts you at risk. Developing genetic risk scores Put very simply, a certain value is placed on each gene variant, which reflects the extent to which it can affect blood pressure. The variants are then "weighted", i.e. some genes weigh more heavily than others, and the genetic risk score is then the sum of the genetic effects.

"This is how people who are particularly at risk can be identified, and measures can be taken at an early stage before the condition is expressed.

By keeping their blood pressure at a low level, people with a high genetic risk score can achieve a lower risk of disease than people diagnosed with high blood pressure who we consider genetically protected," says Ovretveit.

To study the significance of the genetic risk, the researchers have used health data from participants in the HUNT Study from Trondelag and from the British 'Children of the 90s' study. The latter includes health data from nearly 14,000 children from the time they were born until they were in their twenties. The Health Survey in Trondelag (HUNT) is a large, Norwegian population-based health survey that includes health information and biological material from the inhabitants of Trondelag. Since the first collection round in 1984, 250,000 people from Trondheim have participated.

By comparing the blood pressure of the children who had the highest genetic risk with the children who were lowest on the scale, the researchers were able to see how the average blood pressure in first group was higher from as early as the age of three. The difference lasted throughout their childhood and became more pronounced in adulthood.

Difference increases with age

"Although the differences in blood pressure are not very large, the time component is important. If your blood pressure is slightly elevated over many years, it will affect how prone you are to cardiovascular disease and kidney disease," says Ovretveit.When the researchers compared the risk scores and health data of the HUNT Study participants, they saw that the differences in blood pressure between the participants with the highest and those with the lowest risk persisted throughout their whole lives.

"We have been able to follow the same people from when they were around 37 until they were approximately 70 years old. We found that the differences persisted and resulted in various disease risks, where the differences in disease were quite large." The researchers also found more positive results: if measures are taken, such as lifestyle changes and medications, the risk of disease can be significantly reduced.

"By keeping their blood pressure at a low level, people with a high genetic risk score can achieve a lower risk of disease than people diagnosed with high blood pressure who we consider genetically protected. It seems that controlling your blood pressure matters more than genetics," says Ovretveit.

Large population studies provide good data As a basis for the study, Ovretveit and colleagues have used findings from the largest genetic study on blood pressure currently available, which includes data from over a million people. Ovretveit believes the study shows the possibilities that lie in genetic data from large population studies.

"I don't think you should start measuring blood pressure in every single child, but the type of data we have used in this study can be used in the future not only to prevent disease but also to address the risk factors associated with a disease," says Ovretveit.

Is it a problem that Europeans are overrepresented in population studies?

"Yes, it is, but we are now actively working on developing genetic risk scores that are adapted to other populations, and that can be used across many different populations," says Ovretveit.

To date, researchers have identified around 1500 gene variants that have a clear connection with blood pressure, but the biological effect that many of these genes have on blood pressure is not known. To find a reliable method, the researchers had to identify high-risk combinations of gene variants and combinations that posed a lower risk through a process of trial and error.

"A common method for creating a risk score for genetic disease is to include only those gene variants that are known to have a strong connection with the disease," says Ovretveit.

But there are other methods such as including gene variants that produce effects we are more uncertain about. As a result, we get a lot more data in the calculation.

"Complex blood pressure traits may be affected by far more gene variants than we have identified so far. The methods we have developed allow this to be taken into account, but we also have to keep in mind that the individual effects of these variants are small," says Ovretveit.

The method that gave the most accurate risk score included over a million gene variants.

"But there are far more that have a known connection with high blood pressure," says Ovretveit.

Iron deficiency

90 per cent of young Indian women suffer from iron deficiency: Doctors (The Tribune: 20240226)

https://www.tribuneindia.com/news/health/90-per-cent-of-young-indian-women-suffer-from-iron-deficiency-doctors-594432

Iron plays a crucial role in transporting oxygen throughout the body and supporting overall energy levels

"Despite efforts to promote healthy eating and supplementation, 90 per cent of young women still struggle with insufficient iron levels," National Technical Head and Chief Pathologist Rajesh Bendre of Apollo Diagnostics said. iStock

Iron deficiency is a widespread issue among young women, affecting around 90 per cent in India, said doctors on Sunday, calling the need for timely detection of the condition.

Many women experience low iron levels without realising it, often attributing symptoms like fatigue and weakness to other causes.

Iron deficiency is a common nutritional shortfall that occurs when the body doesn't have enough iron to support its functions.

This essential mineral plays a crucial role in transporting oxygen throughout the body, maintaining healthy red blood cells, and supporting overall energy levels.

Without adequate iron, individuals may experience fatigue, weakness, shortness of breath, and impaired cognitive function.

"Iron deficiency among young women is a growing concern that is often overlooked. Despite efforts to promote healthy eating and supplementation, 90 per cent of young women still struggle with insufficient iron levels," National Technical Head and Chief Pathologist Rajesh Bendre of Apollo Diagnostics told IANS.

He said factors such as menstrual blood loss, restrictive diets, and heavy reliance on processed foods are behind the rise in iron deficiency among women.

Further the doctor noted that the lack of education about iron-rich food sources and dietary requirements exacerbates the problem.

"It is crucial to raise awareness about the importance of maintaining adequate iron levels and provide accessible resources for proper nutrition education," he said.

Many pregnant women also suffer from iron deficiency, leading to low haemoglobin, anaemia, and its associated symptoms such as pale skin, the expert said.

“Iron deficiency in many pregnant women is a pressing concern that can have far-reaching consequences. Beyond the immediate health risks to the mother, such as anaemia and fatigue, iron deficiency during pregnancy can also hinder foetal development. Inadequate iron levels in expecting mothers may increase the risk of preterm birth and low birth weight, which can impact a child’s long-term health and cognitive development,” Bendre said.

Addressing iron deficiency in pregnant women goes beyond simply supplementing with iron pills. Experts should educate women about the importance of regular prenatal check-ups to monitor their iron levels throughout pregnancy, enabling timely intervention if deficiencies arise.

Breast Cancer

Study sheds more light on detection of breast cancer (New Kerala: 20240226)

https://www.newkerala.com/news/2024/11648.htm

Scientists have developed a saliva test that detects breast cancer and has shown promising results in preclinical testing.

A new handheld gadget, according to researchers from the University of Florida and National Yang Ming Chiao Tung University in Taiwan, detects breast cancer indicators from a small sample of spit. Their findings appeared in the Journal of Vacuum Science and Technology B.

"Imagine medical staff conducting breast cancer screening in communities or hospitals," said Hsiao-Hsuan Wan, a UF doctoral student in the Department of Chemical Engineering and the study's lead author. "Our device is an excellent choice because it is portable -- about the size of your hand -- and reusable. The testing time is under five seconds per sample, which makes it highly efficient."

The new tool works by placing a saliva sample on a test strip, which is treated with specific antibodies that respond to cancer biomarkers.

Electrical impulses are sent to contact points on the biosensor device. Signals are measured and translated into digital information about how much biomarker is present. The results are quick and easy to interpret, Wan said.

During testing, the device distinguished between healthy breast tissue, early breast cancer, and advanced breast cancer in a small group of 21 women. Their biosensor design uses common components like glucose testing strips and the open-source hardware-software platform Arduino.